श्री सीतारामाभ्यां नमः ❀

अयोध्या-लक्ष्मणकिला-निवासी

१००८ श्रीस्वामी

ानन्यशरणजी महाराज

कृत

अर्थ पंचक

श्री लक्ष्मणकिला के महान्त श्री रामदेवशरण जी
महाराज की आज्ञानुसार महात्मा श्रीरामप्यारी-
शरणजी की प्रेरणा से

प्रकाशकः—

बाबू श्रीरामबहादुरशरण जी

मुकाम—बुलाकीपुर, पोस्ट—रीगा,
जिला—मुजफ्फरपुर।

प्रथमावृत्ति ५००] सम्बत् २००७ [निछावर ।) मात्र

दो शब्द

श्री अयोध्या-लक्ष्मणकिला निवासी (साकेतवासी) श्री १००८ श्रीस्वामी युगलानन्य-शरण जी महाराज के करकमल से लगभग ८४ ग्रन्थ निर्मित हुए थे। उन में पारस भाग एवं श्री रघुवरगुणदर्पण आदि भाषा के, श्री सीताराम-नामप्रताप-प्रकाश संग्रह और उत्सव प्रकाशिका, चतुष्ट गुटका, श्री जानकीहुलाश शतक, श्री अवधबहार, उज्ज्वल उत्कंठा विलास एवं मधुर मञ्जुमाला आदि पद्यात्मक ग्रंथ प्रकाशित होचुके हैं। यह अर्थ पंचक भी उन्ही पद्यात्मक ग्रन्थो में से छोटा-सा एक ग्रन्थ है। महात्मा श्री रामप्यारीशरण जी ने प्रूफ संशोधनार्थ मुझसे कहा। मैंने यथावकाश एवं यथामति प्रसङ्गों को सुस्पष्ट रखने एवं संशोधन की चेष्टा रक्खी है। मेरे दृष्टि-दोष से एवं प्रेस की अनवधानता से यदि त्रुटि रह गई हो तो सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

बिनीतः—

श्री श्रीकान्तशरण

श्री सद्गुरुकुटी, गोलाघाट, श्रीअयोध्या जी।

❀ श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः ❀

श्री सद्गुरवे नमः

श्रीहनुमतेनमः

अथ अर्थ-पंचक

दोहा—

वंदौं बाग बिहार बर, बरधन श्रीगुरु-दृष्टि।
बिमल बोध अबिरोध मत, बरसावनि वर वृष्टि ॥ १॥

श्री सियबर रस रति रसिक, परिकर प्रेम निवास।
बन्दौं मन बच काय करि, कीजै कृपा प्रकास ॥ २॥

श्री श्री अवध अनूप पद, असद दमन दिल ध्याय।
श्री सरयूचित चरन हिय, हरन नमो हरषाय ॥ ३॥

श्री सुन्दरि सुखमा सदन, पद पंकज सियराम।
बार—बार बन्दौं हृदय, दायक द्युति बिश्राम ॥ ४॥

अमल अर्थ पंचक परम, प्रेम प्रबोध निवास
सरल वचन रस रचन में, बरनौं सहित हुलास ॥ ५॥

पांच अर्थ बर बोध बिनु, ब्याकुल जीव [1]कदम्ब।
सुख सरसै केहि भांति तहँ, जहँ नहिं [2]सर अवलम्ब ॥ ६॥

सुमन मुमुक्षु मौनप्रद, समीचीन मत सार।
धनि-धनि मनन करत हिय, [3]बिगलित बिबिध प्रकार ॥ ७॥

१—कदम्ब = समूह २—सर = पाँच ३—विगलित = गला हुआ, शिथिल, बिगड़ा हुआ।

[1]जीव [2]ईश [3]साधन [4]सुफल, अफल [5]बिरोधी जानु ।
युगल अनन्य शरण सुभग, अर्थ पांच ये मानु ॥८॥
एक-एक मधि पंचधा, भेद अखेद बिचार ।
इनको नित मन मनन करि, बिलग बिषय ब्यवहार ॥९॥

चौपाई—

तिनके सब लक्षण सुखदाई । सुनो गुनो मुद मोद बढ़ाई ॥

जीव-विवेचन

प्रथमहिं जीव स्वाभाव सुनीजे । ज्ञानानंद चितहि दिल दीजै ॥
अविनासी अज्ञान बिहीना । भयो सो कर्म-भर्म-आधीना ॥
है अनादि बंधन नहिं नूतन । बरन्यो सद् ग्रंथन अवधूतन ॥
तामें भेद पांच पुनि हेरो । बद्ध मुमुक्षु कैवल्यहि हेरो ॥
मुक्त नित्यमुक्तहु मन मोहै । बिश्व वासना बिरस बिछोहै ॥

बद्ध

प्रकृति बिबस सोइ बद्ध कहावै । सार बिसार असार गहावै ॥
बिषय भोग मधि रुचि अधिकाई । चाहत नित जग मान बड़ाई ॥
सुगुरु ज्ञान विपरीत करावन । दुख समुद्र सब भांति भरावन ॥
साधन बहु बाधन के कारन । करत मूढ़ आनन्द निवारन ॥
प्रभु सम्बन्धि समीप न जावे । शंका सहित चित्त सकुचावै ॥
सारासार बोध नहिं रंचक । भावै सदा संग जग बंचक ॥
मल-मूत्रादि कलीनन को घर । तामें मगन होत प्रमुदित-तर ॥
महा अपावनता जेहि माहीं । ता तनुहित अतिरति उपजाहीं ॥
जननी जनक सुवन गृह बामा । मानै हितकारी दुख सामा ॥
योग समेत सतत हरषाही । भये बियोग अधिक बिलखाही ॥

पुण्य पाप मय कर्म कमावै । हृदय बासना बीज जमावै ॥
तेहि हित तिहु [१]तापनि ते ताये । हाय हमेश समेत सताये ॥
षट [२]बिकार [३]उर्मिन युत सोई । अरु [४]षटबर्ग खेद मुख धोई ॥
तीनौ गुनकरि बिक्यो बिमोहित । जाते निजपर रूप तिरोहित ॥

एक-एक अति प्रबल रिपु, करन कलेश कदंब ॥
सुखदाई गुरु संत पद, लहत न तिल अबलंब ॥१॥
जन्म जरा मरनादि दुख, दुखित हमेश बिहाल ॥
पोषत तन निज नास्तिक, भाव सहित मत बाल ॥२॥

देह अनित्य आतमा जानै । निज सुख रूप न हृदय पछानै ॥
शब्दादिक विषयन के हेता । त्यागै बरन बिहित कृत नेता ॥
सदा असेवित सेवित पाँवर । हिंसक द्रोह लीन बद बावर ॥
श्रीसियबर पद पंकज छोड़े । विमुख नरन सन नाता जोड़े ॥
संतत क्रूर धूर सम सोई । जिनकी प्रीति न प्रभु पद होई ॥
लहहि बिनोद बलित कुलजाती । बामा बदन बिलोकि बिहाती ॥
निशा भोर वाही पुनि पेखे । निजबपु अधिक सुफल करि लेखे ॥
संतन को समीप नहिं भावै । जो मिलाप कहुँ तहुँ दुरि जावै ॥
काम कलंकित हृदय सदाई । छन-छन रुचि जगबिषय बड़ाई ॥

इत्यादिक भवगुन सहित, अवगुन धन भंडार
बद्ध जीव लच्छन कहै, समुझहि सुमति उदार ॥१॥
बद्ध बिलोकौ दशौ दिशि, दुर्लभ चार बिचार
श्री सीतापति चरनगहि, उतरि जाहु भव पार ॥२॥

१-तीनताप=दैहिक, दैविक और भौतिक तापें २-षट्-विकार=काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर ३—षट्-ऊर्मी=जन्म, मरण, क्षीणता-पीनता, जरा, व्याधि आदि लहरें ४—षट्-वर्ग=मन के और पाँच इन्द्रियों के विषय ।

मुमुक्षु

लक्षन बिशद बिराग मय, मधुर मुमुक्षु जान ॥
पारायण परमेश पद, समुद बिहाय जहान ॥

युगल लोक सुख चाह बिसारी । दृढ़ निर्वेद खेद बिन धारी ॥
श्री गुरु पद पदुम सुप्रेमा । सेवे नेह निरंतर नेमा ॥
तामें भेद भाँति दुइ मानो । एक प्रपन्न भक्त पुनि जानो ॥
लक्षन भक्तनिष्ठ सुनि लीजै । हिय निज गुनत सुधारस पीजै ॥
सारासार विचार विशेखी । त्यागी निखिल निषेधित शेषी ॥
विहित कर्म आलस सह सेवत । भाविक भजनभाव भल भेवत ॥
दूर कियो प्रतिपादि अनेका । ज्ञान समेत अमल चित टेका ॥
सदा एक रस प्रेम बढ़ावै । श्री सियराम लखत हरषावै ॥
भोगै निज प्रारब्ध अशेषा । नहिं उद्वेग हृदय कछु रेखा ॥
संतसंग साजत नित रहिये । तिन वर वचन शुद्धनिधि वहिये ॥
विश्व वासना बीच भुलाने । तिनको साथ न करहिं सयाने ॥
कामी कलिल कलंक करावै । ताहित ताको सँग बिसरावै ॥

निखिल भोग प्रारब्धकरि, परिहरि हृदय गलान ।
बीते काल विशेष कछु, पावत पद सुख खान ।
धी धीरज धारे रहै, गहै इष्ट विश्वास ।
कर्म कषाय कढ़ाय पुनि, पहुँच पियपुर पास ॥

दूजो परम प्रपन्न स्वरूपा । सुनिये सरस स्वभाव अनूपा ॥
श्रीसियराम मिलन हित तलफै । सह्यो जात प्राकृति नहिं हलफै ॥
छिनहूँ भरि विलंब दुखदाई । चित चित चाह आह गुनगाई ॥
श्रीगुरु कृपा कटाक्ष सुहावन । चितवत रहत रहित मनभावन ॥
तीन तत्वभल भेद विचारी । पुरुषारथ निश्चय उर धारी ॥
तीन रहस्य अर्थ सुख दायक । जानो श्रीगुरु ते भ्रम हायक ॥

सियवर पदसइ शरन सँभारी । संतत अनुष्ठान व्रतधारी ॥
निखिल उपाय विहाय विशेषी । केवल कृपा सुधानन लेषी ॥
कैंकरता निज भोग्य अनूपम । सहजहि त्यागिदियो तम कूपम ॥
सो प्रपन्न द्वैभाँति विचारी । दृप्तरु आरत भेद दृढ धारी ॥
प्रबल वपुष प्रारब्ध विहाई । श्रीसियवर प्रत्यक्ष मिलिजाई ॥
सब छरभार सियावर माँही । अरपन कियो शरन गहिबाहीं ॥
दिनहि वितावत दैव निहारी । सोई दृप्त प्रपन्न बिचारी ॥
जब चाहै तब मोहि मिलावै । निज जन जानि पियूष पिलावै ॥
हौं शरणागत सब विधि आयो । दूजी प्रीति रीति बहु वायो ॥
आरत सह न सकत विरहागी । पलप्रति ललनमिलन हितलागी ॥
एक निमेष कल्प शत माने । विश्व विभूति जहर यम जाने ॥
जेती प्रीति-रीति संसारी । तिन सबको मानत कटुकारी ।
बचन वदत आलस अति आवे । विरही विरह सुताप सतावै ॥
लौकिक वैदिक दिशि नहिं दौरे । केवल प्रेम सुतरु उर बौरै ॥
बीज वासना अतिहि हुनाये । विधिविभूति लगि शीश धुनाये ॥
ऐसे अनुरागी आरत वर । हैं कोई कोटिन माँझ लगन पर ॥

वरन्यो विशद विनोद मय, मधुर मुमुक्षू भेद ।
युगल अनन्य शरन सदा, सुनत गुनत गत खेद ॥
रुक्ष मुमुक्षू आन पुनि, जिनहि न प्रभुपद प्रेम ।
विश्व वहावन हेतुबहु, पचै विवरजित क्षेम ॥

कैवल्य

तीजे केवल भाव विचारो । तेहि युत पुनि कैवल्य निहारो ॥
प्रथम तासु रहनी हित गुनिये । वहुरि विचारिचरित सुख सुनिये ॥
जगत जाल से भीत रहावै । विधि विभूति स्वपने नहिं भावै ॥
सकृत विलक्षन कोउ यक पाई । योग आठ अंगहु लय लाई ॥

साधन ज्ञान समेत एक रस। पाय रूप निज पुनि नहिं परवस ॥
श्रीसियवररस स्वाद न जिनके। निज स्वरूप मधि मानस तिनके ॥
संसृति रहित भये नर सोई। पै रघुवर सुख स्वाद न होई ॥
बंदीखानो सम दुःखरासी। मुक्ति नहीं यह जीव कि फांसी ॥
तौन ज्ञान अज्ञान कहावै। जहाँ न सियवल्लभ मन भावै ॥
सियवर सुधा समुद्र सुहावन। तेहि कन एक अगुन मुदभावन ॥
रूप अनूप विहीन सनेही। सतमत माँहि अकारथ देही ॥
धिक जो जान न जानकिजीवन। पुनि चाहत निर्गुन छल छीलन ॥

भाग्य विहीन मलीन मन, चित चाहँहि कटु क्लेश।
त्यागि स्वरूप परेश रति, छन छन सुछवि विशेष ॥
लीला ललित न हास्य रस, बदन कंज सुखपुंज।
केवल बंधन मुक्त है, रहत तहाँ अति लुंज ॥
सपनेहू निज इष्टरस, रहस रहित मत बीच।
कीन्हे रति सब भांति से, लखब आपनी मीच ॥
श्रीसीतावर माधुरी, महा मोद निधि माँझ।
मगन रहा करिये सतत, सं विहाय सुख बाँझ ॥

मुक्त

लक्षन मुक्त जीव अब सुनिये। भलहि प्रकार सार गुन गुनिये ॥
श्रीसियवर प्रसाद बल पाई। सहज विहाय विषय समुदाई ॥
सहज सुषमना से तजि प्राना। होय विगत संसृति तमताना ॥
अथवा काहू भाँति शरीरहि। त्यागि मिलहि प्रीतम रघुबीरहि ॥
दिव्य भव्यतर जानि तहाहीं। ले आवहि परिषद छविछाहीं ॥
सहस सूर शशि तेजतोम तन। वंदित अमर गुनेश अमित जन ॥
यान अनंत भानु सम सोहैं। तेहि आरूढ़ सुमुनि गन मोहै ॥
नाना भाँति सुमंगल कीन्ही। नृत्य गान आदिक छवि दीन्ही ॥

बहुविधि तेहिपरितोष करावहि । हिय अनुराग सिंधु भरवावहि ॥
आयहु हर्ष ताहि हरषावै । कुसुममाल अनुछन बरसावै ॥
याही भाँति लोक लोकन प्रति । होत प्रमोद विनोद सहित रति ॥
काहू थलमन रमत न रंचक । जान्यो प्रथम विषय अति वंचक ॥
याही भाँति लांघि सुर लोकन । चाह चौगुनो सुछवि बिलोकन ॥
कब धौं नैन सुफल मम होवै । सियसमेत सुख निधि मुखजोवै ॥
माया मंडल भेद बहोरी । मिलन हेतु हिय प्रीति न थोरी ॥

पंथ माहिंनाना चरित, अवलोकत मन मोद ।
धाम समीप सुजात पुनि, परिकर वलित विनोद ॥
दिब्य अमानव कंजकर, परसत बिरजा नीर ॥
तजत वासना सहित तन, सूक्ष्म गुनन गँभीर ॥
प्राकृति वपु आवेश तहँ, होत भली विधिनाश ॥
पावन परमानंद मय, वपुष सुप्रेम निवास ॥

परम अनूपम वपु शुचि पाई । दिव्य अलंकारित सुखदाई ॥
वामा अमित आभरन साजी । कीन्ही ताहि विविधिविधि राजी ॥
नित्यमुक्त परिकर मिलि सोई । लइगे नित्य सेवा खुशबोई ॥
दिव्य महा मनि मंडप माहीं । सहस थंभ संयुत सरसाहीं ॥
विशद वेदिका तहाँ विराजै । पुनि तेहि पर सिंहासन छाजै
तापर गौर श्याम रंग भीने । राजहिं परिकर सहित प्रवीने ॥
अँग अँग अमलविलोकयोजाई । भेट्यो पुनि सियवर सुखदाई ॥
यथा भाव अनुकूल सुसेवा । दियो पुनि ताहि देवपति देवा ॥
मनहुँमहोदधि मीन लीन जिमि । लह्यो हर्ष सो बरनि कहौं किमि ॥

जामे जाको प्रीनि दृढ़, वाही लोक अशोक ॥
माँफ गवन ताको अवश, तजि तमप्राकृति ओक ॥
अर्चिरादि मारग कह्यो, सदग्रंथन अनुकूल ॥
सदा सुधारो हीय निज, होत विस्मरन थूल ॥

जौ लौं निज नायक नवल, धाम बाम नहिं जान।
तौलौं वाके कर्म कृत, काई कठिन पछान ॥
प्राकृत तन नेही न रुचि, तौलौं है हिय बीच।
जौलौं प्रिय परिकर मधुर, रूप न चिंतित नीच ॥
शब्द सरस संसार को, तब तांई जिय जान।
सुनत न धामिन धुनि बिमल, परम प्रेम रस खान॥
ऐसे ही कुल करन की, दीजै सुरति कराय।
श्री सद्गुरु बर बाग सुनि, ममता जिकर जलाय ॥
एक रीति सामान्य यह, कह्यो मिलन के बीच।
अपर बिचित्र रहस्य मय, अतिसय गोप अकीच ॥
रसिकन की करुना विना, सो दुर्लभ तर मान।
युगल अनन्य शरन सुखद, सुलभ नेह युत जान ॥

सोरठा--

कह न कहावत पार , अद्भुत पावन प्रेम थल।
समुझहिं संत उदार , जे माते पद कमल अल।
बिभिचारिन के खेद , होत पतिव्रत धर्म सुनि।
लखै मरम नहिं वेद , बार-बार शठ शीश धुनि।

मुक्त जीव बरनन कियो, यथा सुमति अनुसार।
श्री सियवर सद्गुरु कृपा, पाय परमपद प्यार ॥
प्रथम बद्धताई बिसरि, जैबो अति आश्चर्य।
जाते लौकिक काम कुल, कर्षहि अन-ऐश्वर्य ॥
रूप मुमुक्षू रसिक जन, अति दुर्लभतर जान।
पुनि कैवल्यहु कठिनतम, कष्टसाध्य पहिचान ॥
मुक्त दशा दुर्लभ महत, सियबर कृपा अधीन।
युगल अनन्य शरन कहा, कहौं दशा अति झीन ॥

नित्यमुक्त

नित्यमुक्त बरनन सुनो, त्यागि बासना बीज ।
पावो परम परेश पद, पंकज चिद घन चीज ॥
नित्य धाम अभिराम में, बसहिं जौन नर स्वच्छ ।
तिनही को दरस सुघर, सियबररूप प्रत्यक्ष ॥

जगत जाल परसत नहिं जिनको । लेश अविद्या ग्रसत न तिनको ॥
श्री सीतावर संग बिहारा । बिबिध भांति उत्साह अपारा ॥
संतत टहल सुधा निधि चाहै । परम प्रमोद उमंग अथाहै ॥
प्रभु अनकूल भोग निज जाने । तत्सुखसुखी स्वरूप लोभाने ॥
कौशल पति निदेश धरि शीशा । चहं बनावै बिश्व समीशा ॥
पै उनके हिय चाह न होई । आज्ञा देत न तिमि प्रभु सोई ॥
सेवक सेव्य परस्पर भीने । लघु गुरु मरम न नेक पतीने ॥
श्री सीताबर सहज सुभाऊ । जनसे करहिं अमित चितवाऊ ॥
अद्भुत लोक कहैं को गाई । बिष्णु बिरंचि थके श्रमपाई ॥
श्री साकेत धाम आभाबर । ब्यापि रह्यो अगजग सबोंपर ॥
श्री अवधेश धाम गति न्यारी । का जानै जड़ जीव अनारी ॥
श्रीगुरु इष्ट कृपा कछु पाई । बरन्यौ धाम बिचित्र बड़ाई ॥
धाम माहिं जे तर्क रचावें । ते पामर मन नाच नचावै ॥

नित्यमुक्त बरनन कियो, लक्षन अधिक उदार ।
जो कोउ सुने सनेह रचि, रूचि चित चढ़ै बिहार ।
श्री हनुमान प्रधान प्रिय, नित्यमुक्त जन माहिं ॥
ताही ते तिन चरन रज, शीश धारि सरसाहिं ॥
पाँच भेद बिन खेदही, जीव निरूपन कीन ॥
युगल अनन्य शरन मरम, समुझहिं परम प्रवीन ॥

प्रथम तीसरो त्यागिये, निज़ हित अहित बिचार ।
युगल अनन्य शरन बिशद, भाव भावना धार ॥

ईश्वर विवेचन

ईश स्वरूप अनूप पांच बिधि । बरनत होइ बिरुद्ध सहज सिधि ॥
परअरु व्यूह विभव हियगुनिये । अंतर्यामि सदर्चा सुनिये ॥
ईश्वर पांच प्रकार सुहावन । निज अधिकार योग मन भावन ॥

पर

नित्य एक रस अवध-बिहारी । नायक-युगल विभूति खरारी ॥
दिव्य नव्य गुन अमित समेता । कारन चतुर रूप सुखहेता ॥
नित्यमुक्त मुक्तन मुद-दायक । श्री साकेत ईश रघुनायक ॥
बिबिधि शक्ति संयुक्त सदाई । भूषन नवल अङ्ग प्रति छाई ॥
दिव्य भव्य सौंदर्य्य निधाना । गुनातीत गुनराशि सुजाना ॥
सगुन अगुन कारन रसरासी । जेहिसुमिरत छूटत भवफांसी ॥
निज इच्छावश कबहुँ कृपाला । प्रगटत परिकर सहित रसाला ॥
रूप भेद गुन भेद न होई । परम पुरुष जानत कोइ कोई ॥
श्री सीतावर अकथ विचारो । सर्वोपरि सुखसिन्धु सम्हारो ॥
श्री सियवल्लभ कृपानिधाना । निज स्वरूप गुन अंश प्रधाना ॥
नारायण तिमि विष्णु कहावै । सो वैकुण्ठ बीच छवि छावै ॥
अंश प्रशंस जानकी नायक । नारायण आदिक गुन गोयक ॥
औरन से सोई पर जानो । मरम गोप गुरुवाक्य प्रमानो ॥

परम परेश परात्पर, राजत नित्य किशोर ।
श्री जानकी सुप्रान प्रिय, नखशिख अति चितचोर ॥

गुनागार श्रुतिपार कल, केलि करन रस एक।
युगल अनन्य सनेह सजि, सेइये सहित विवेक॥

व्यूह

आमोदादि लोक मँह बसहीं। व्यूह वेद सुन्दर वपु लसहीं॥
बासुदेव प्रद्युम्न विचारो। संकर्षण अनिरुद्ध निहारो॥
तेज तनरुतर ओज प्रभावा। अमितभाँति संतत सरसावा॥
उद्भव थिति पालन के कारक। सकल लोकहित जीव उधारक॥
व्यूहाकृत प्राकृत तन हीना। वरनन कियो स्वल्प सुखभीना॥

विभव

विभव भेद अब सुनहु सप्रेमा। जिन संबन्ध पाय हित छेमा॥
तामे बेद विधान श्रवन करु। मुख्य शक्ति आवेश गौन धरु॥

मुख्य-विभव

असत धर्म नाशन के काजा। धर्मसुथिति कारन शिर ताजा॥
भक्तन के रक्षन हित आवैं। सब विधि दीनदयाल कहावैं॥
मंगलमय वपु जन सुखदाई। दानी दीन जनन सुखदाई॥
दिन कछु रहिसंशय तमतारी। परम कृपा सागर अविकारी॥
निज यश सरस लोकमधिराखी। गमनकरत निजधामसुभाषी॥
सोई मुख्य जानि अवतारा। कृष्णादिक हरि रूप उदारा॥
जो कोउ कहत सियावर नामहि। इन सबहेतु संग यह तामहि॥
कबहूँ श्री परेश सुखदाई। त्रिभुन माँझ निज तेज धराई॥
प्रगटत पुहुमि रूप-गुन धारे। रावनादि निशिचर संहारे॥
याही हेतु गुनन जन करहीं। अपर कुतर्क करत तम परहीं॥
निज इच्छा ते नित्य विहारी। आविर्भाव होत सुखकारी॥

है तहँ हेतु कबहुँ नहिं रंचक। बदहि आन मानो तेहि वंचक ॥
कोटिन कला विकल्प विहावै। तौ भी नहि निश्चय जा आव ॥
लीला ललित देखावन काजा। प्रगटत नित्य अवधपुर राजा ॥
ताको मरम न कोई जानै। सब जन हरि अवतार बखानै ॥
तहाँ लखै जे परम उपासक। माया मूल विनाशक लाशक ॥
कृपासाध्य गतिगेप विचारो। याते भिन्न भाव मति धारो ॥
अब प्रसंगचहुँविधि मधिसुनो। थिरचित होइ हीय निज गुनो ॥

शक्ति-विभव

बुद्धादिक सब शक्ति निहारो। ईश शक्ति अवतार बिचारो ॥

आवेश-विभव

द्वै प्रकार आवेश सोहावै। शुद्धाशुद्ध जीव युत छावै ॥
शुद्ध जीव में ईश प्रवेसा। सोई सुहृद शुद्ध आवेसा।
व्यासादिक शुभ शुद्ध बिराजे। इतर परसुधर आदिक भ्राजे ॥
सात्विक राजस तामस पाई। ईशावेश विचित्र बताई ॥

गौण-विभव

श्रीशंकर बिरंचि कपिलादिक। यह अवतार गौन प्रति वादिक ॥
चार प्रकार विभव भल गाये। जाने जन यश बुद्धि सुहाये ॥

अंतर्यामी

अंतर्यामी वपुष बिहीना। व्यापक अगजग माँझ प्रबीना ॥
ज्ञानानन्द द्वन्द बिन नितही। अगम अगोचर सब जनमतही ॥
सत्ता निर्वाहक सब माहीं। ब्रह्म आदि सब नाम सोहाहीं ॥

रूप अनूप सहित नित बासा। निजभक्तन हिय करहि बिलासा॥
केवल साखी रूप बिराजै। स्वाद मोद नहिं देत कदाजै॥
जो अंगुष्ठमात्र वपु बरने। सो साकार रूप हिय हरने॥

निराकार सब में वसत, भक्तन हिय साकार॥
युगल अनन्य विचार बिनु, भटकहिं अंध गँवार॥
निराकार में सुख नहीं, केवल व्यापक रूप॥
सरस रहस साकार मधि, श्री श्रुति शेष निरूप॥

अर्चावतार

सब बिधि अतिकमनीय उदारा। अब सनिये अर्चा अवतारा॥
चार प्रकार भेद इन माहीं। तीरथ देश पुन्य सरसाहीं॥
निजबल्लभवर भक्तभवन में। दारु आदि वपु मध्य अवनि में॥
कृपा अहेतुक जनपर राखी। नित्यहि निकट रहहि श्रुतिसाखी॥
प्रीति मानि पूजा बहु भाँती। अंगीकार करत तजि जाती॥
परम स्वतंत्र भक्त आधीना। सत सर्वज्ञ अज्ञता लीना॥
सदा अचिंत्य शक्ति श्रमहारी। रहत तऊ असमर्थ खरारी॥
पूरण काम सदा सुखरासी। पै कामी सम रहस बिलासी॥
चेतन सहज भाँति जड़ समता। रक्षक परम रक्ष्य इव रमता॥
संतत रहत अगोचर जोई। अति दृग दृश्य भयो प्रभु सोई॥
दुर्लभबिधि आदिक जो स्वामी। भयो सो सुलभ भक्त अनुगामी॥

अर्चा के भेद

स्वयंव्यक्त तिमि दिव्य विराजै। सैध्य सुभग मानुष छबि छाजै॥
यहै प्रकार बिचारि चार बर। अब सुनिये लक्षन मनबस कर॥

स्वयंव्यक्त सद श्री रंगादिक । अप्राकृत वपु नित निरुपाधिक ॥
निज इच्छा से प्रगट सुभये । भक्तन मन मुद मंगल दये ॥
देव प्रतिष्ठायित सोइ दिव्य । सैध्य सिद्धपूजित भल भव्य ॥
मानुष सुस्थापित में द्वेधा । धाम ग्राम मधि कहत सुमेधा ॥
अर्चा बीच परम सुखदाई । स्वयंव्यक्त श्री शिला सोहाई ॥
सालिग्राम समान न दूजा । अर्चा अतिहि सुलभ तर पुजा ॥
पर आदिक जो बिग्रह चारी । सो अतिशय दुर्लभ दुःखहारी ॥

सबही बिधिसे सुलभ अति, श्री अर्चा अवतार ।
युगल अनन्य कृपाल बपु, पूजनीय गुन सार ॥
श्री सलिग्रामार्चन, अति दुर्लभ फल देत'।
युगल अनन्य उपाधि भ्रम, जनित दोष हरि लेत ॥
श्री आचारज-वर्य्य ते, पाय परेश स्वरूप ।
युगल अनन्य सनेह सजि, भजु भजनीय अनूप ।'
श्री सद्गुरु दृग दया से, पाय प्रसाद प्रकाश ।
पांच भांति वपु ईश को, कीन्हो स्वच्छ विकास ॥
बार बार उर ध्याइये, श्री सीताबर रूप ।
अंशाबेस कला सकल, समुझत सुखद अनूप ॥

उपाय विवेचन

उज्वल असल उपाय अब, बरनत हौं सुख खान ।
जाके जानतही नसैं, बिबिध बासना भान ॥

कर्म ज्ञान अरु भक्ति प्रपत्ती । आचारज निष्ठा दुतिबत्ती ॥
इनते आदि अनेक उपाया । श्रुतिसम्मत संतन मुख गाया ॥

मुख्य पांच येही सुख खानी । बदहि बेद बानी सरसानी ॥
इन सबके लच्छन छबि धरनी । कहै बिचारि तीन तमहरनी ॥

कर्म

कर्म बिविधि बर बोध बिचारो । नित नैमित्तिक काम निहारो ॥
यज्ञ दान तप होम बिधाना । संयम अरु अध्येन प्रधाना ॥
संध्योपासन जप तिमि मंजन । पुन्य सुदेश अटन जनरंजन ॥
तीरथवास तथा उपवासा । तैसे ही ब्रत चातुरमासा ॥
फल मूलादिक असन सप्रेमा । अर्घ्य पाद्य तर्पन हित छेमा ॥
यहि बिधि कर्मन में चितलावै । काया सोधन सहित सोहावैं ॥
पाप बिनाश होइ सब ताको । जो बिन काम करै नित याको ॥
अंतःकरण शुद्ध होवै जब । बिरति बिषय अंतर पावै तब ॥
यम आदिक अष्टांग समेता । क्रमही से अभ्यास उपेता ॥
तब निज शुद्ध स्वरूप प्रकासे । विविध मलीन वासना नासे ॥
यद्यपि कर्म उपाय बखाने । तदपि दोष यामे बहु ठाने ॥
प्रथमहि कर्म फलादिक त्याग । है यह कठिन बहुरि बैराग ॥
स्वर अरु वरन लोप फल नासे । काल रहित मंगल नहि भासे ॥
उत्तर अयन अपेक्षा मंत । बिन पाये सो खेद अनंत ॥
औरहु अमित उपद्रव तामे । ताते अतिदुर्लभ सिधि यामे ॥

ज्ञान

चित दैकै अब सुनिये ज्ञान । जेते हैं कैवल्य प्रधान ॥
शुभ कर्मन ते ज्ञान प्रकाशा । होवत है निज हृदय हुलासा ॥
ज्ञान भये पर पुनि अभ्यास । करैं सहित बैराग हुलास ॥
मानसकुंज मध्य इमि ध्याना । रबिपावक मधि धाम प्रधाना ॥
तामधि सिंहासन सुधरावे । दिव्य मनिनमय बसन धरावैं ॥

श्री सियवर मूरति मन हरनी । ध्यावैं तहाँ सहज सुख भरनी ॥
नखशिखनबल अंगरस सागर । चिनमय करैसदा मतिआगर ॥
भूषन सुभग अंग प्रति जो है । निरखि २ पुनि-पुनि मन मोहै॥
परम दिव्य कल्यान गुनाकर । श्री सीतापति रूप प्रभा कर ॥
याही भाँति सदा मनलावै । कबहूँ प्रेम विवश प्रगटावै ॥
भक्ति योग सहकारी सोया । होय ज्ञान निर्मल पद जोया ॥
लहै मुक्ति कैवल्य प्रधान । छूटै त्रिविधि वासना भान ॥
यद्यपि ज्ञान सुसाधन नीका । तदपि कठिन गाहक निज जीका ॥

इन्द्रिन के निग्रह बिना, दुलर्भ ज्ञान सुजान ।
ताहू में आयू अलप, ताते भजन प्रमान ॥

भजन करत पावत परम, पुरुष प्रेम परतंत्र ।
युगल अनन्य न भूलिये, श्री गुरु अनुपम मन्त्र ॥

बिना रूप अनुभव प्रगट, होत न निर्मल बोध ।
है दुर्लभ सब बिध परम, संत शास्त्र सत शोध ॥

ज्ञान बतकही करहिं जन, लोक सुरन्जन हेतु ।
युगल अनन्य न पावहीं, भव निधि दुखतर सेतु ॥

भक्ति

सुनिये श्रवण सजाय सुजान । बरनत हौं अब भक्ति प्रधान ।
समीचीन आचारज पाई । वरधित होत भक्ति सुखदाई ॥
तैल धारसम रहै एक रस । टूटै नहीं तार कबहुँ सरस ।
सहजहिं सुमिरन सुरतिसनेहा । लागे रहा जहाँ लगि देहा ॥
अन्त प्रयंत बढ़ै पुनि सोई । आयत सभय भेद नहिं होई ।
ऐसी निष्ठा सहित सुप्रानी । पावहि भक्ति श्याम पटरानी ॥
परम सुसम्मति है यह यद्यपि । दुर्लभ सतत मुमुक्षन तद्यपि ॥
मुक्तन को यह सलभ सदाई । है न मुमुक्षुन योग कदाई ॥

ताहू में विलंब बहु होवै। चित चंचल कैसे सुख सोवै॥
कहत सुलभ समझत कठिन, दुर्लभ भक्ति स्वरूप।
युगल अनन्य शरन सहज, सब बिधि ज्ञान अनूप॥

प्रपत्ति

बरनौं सुखद प्रपत्ति अब, सहज बोध के हेत।
छिनही मधि जाके किये, भेंटत कृपा—निकेत॥
सुलभ अधिक मंगल अमल, कारक सहज उदार।
साधन सिद्ध स्वरूप शुभ, सकल दोष निधिपार॥
श्री सदगुरु करुना कलित, पाय होत वर बोध।
युगल अनन्य प्रकास विन, चंचल चित्त निरोध॥

संतत सम्मति संत शिरोमनि। शरन प्रपत्ति रूप चिंतामनि॥
सत्यादिक सब व्यापक नितही। यथा योग गुन रूप अमितही॥
कर्म ज्ञान भक्तिहु के अन्तर। सदाबिराजमान नित तंतर॥
याको सज्जन पालन करही। है नहिं पुनि कहु कहँ तम तरनी॥
शक्ताशक्तहु को फल देनी। अतिशय विगत विलंब सुनैनी॥
श्री रघुवर्य्य बिभूषन प्यारी। नाम प्रपत्ति तिया सुखकारी॥
निज स्वरूप अनुरूप एक रस। साधन सकल रहत यह करिबस॥
याके बिना उपाय अनेका। फल दायक न यथारथ एका॥
इनकी गति अति गोप गँभीरा। जानहिं कोउ विरले मतिधीरा॥
है द्वै भाँति प्रपत्ति मध्य पुनि। आरत दृप्त सुभेद होत गुनि॥

आर्त्त प्रपन्न

आरत भेद सुनहु चितलाई। प्रथमहि मंगल प्रद सुखदाई॥
निरहेतुक करुना सिय वल्लभ। कृपा कटाक्ष विलोकनि दुर्लभ॥

पाय भली बिधि ही सुखरासी। बहुरि मया आचारज भासी॥
तिन के संग रंग रस ज्ञाना। पायो निज पररूप प्रधाना॥
श्री सीतापति रूप सोहावन। मनन करत अनुदिन मनभावन।
निरखि नयन मति होत बावरी। कूदि परत मन प्रीति पावरी॥
प्रीतम पल बियोग गरुआई। ताते अन्तराय सुखदाई॥
हाय हमेशा हिये रहावै। नैनन नीर प्रभाव बहावै॥
खान पान मानादिक त्यागे। निशिदिन नाह मिलन अनुरागे॥

देह गेह सम्बन्ध से, होत अमित प्रत्यूह।
ताते कब यह त्यागिहौं, करत रहत हिय हूह॥
कबहुँ निरंतर एक रस, सत संगति मुद मूल।
करिहौं बिघ्न समूह बिन, श्री सियवर अनुकूल॥
परम विरोधी देह निज, जानत सहित समाज।
सियपिय सन जाँचत रहत, तन त्यागन हित काज॥
कहँ लौं कहौं निरूप अब, आरत भेद अजूब।
युगल अनन्य शरन भये, भेंटत निज महबूब॥

दृप्त प्रपन्न

लक्षन दृप्त प्रपन्न बिचारो। भली भांति अन्तर उर धारो॥
बाल बिचार बिहीन कुसंगति। त्यागे नित रागे प्रभु संगति॥
विषय बासना बीज भुनावै। अनुचित करत सुशीश धुनावै॥
बिबिधि विधान बपुष जड़ पाई। स्वर्ग नर्क भरमत अलसाई॥
अति निर्बेद खेद बिन धारी। भेंटन हित श्री अवधबिहारी॥
श्री सतगुरु पद कंज सोहावन। पुनि पायो पावन तर पावन॥
तिनते प्राप्ति उपाय बिचारी। निर्भय भयो गयो श्रमभारी॥

काम कलंकित कर्म बिसारी । बरन बिहित निज धर्म सम्हारी ॥
धर्म मांझ पुनि आलस करै । केवल प्रभु सेवा अनुसरै ॥
मन बच काय कपट तजि सेवत । अंतर बाहर भेद न भेवत ॥
प्रानहु ते अति प्रिय कैंकर्य्य । सुदृढ़ उपाय सकल बिधिवर्य्य ॥
मानो रहे जहे सब संगा । लगन सुधानिधि मगन सुरंगा ॥
बिशद सुखद सम्बंध बिचारै । छिन-छिन निज पर रूप निहारै ॥

पति पत्नी[1] स्वामी अनुग[2], पिता पुत्र[3] सबंध ।
धर्मी धर्म[4] शरीर अरु, सुभग शरीरि[5] निबंध ॥
शेषी शेष[6] नियाम्य अरु, न्यामक[7] रक्षक रक्ष[8] ।
तिमि आधाराधेय[9] पुनि, व्यापक व्याप्य[10] समक्ष ॥
भोग्य भोगता[11] एक रस, शक्ताशक्त[12] निहारु ।
परिपूरन पूरन[13] रहित, ज्ञाता अज्ञ[14] बिचारु ॥
सकल वासना हीन अरु, [15]अमित बासना पीन ।
निज पर दृढ़ सम्बन्ध इमि, जानत परम प्रवीन ॥

यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा । तद्यपि पति पत्नी सुखरूपा ॥
याहिमाहि अति प्रीति प्रकासे । निरावरन प्रीतम रस भासे ॥
अन्तर भूत सकल रस तामें । ताते सर्बोपरि सुख यामें ॥
पक्षपात की रहनी न्यारी । है यथार्थ समुझै सुविचारी ॥
दृढ़ अनन्यता भाव एकरस । विभचारी मति सुनै न नीरस ॥
सकलभावना सियपिय माहीं । रहे निरंतर अनत न जाही ॥
निर्भय मोद बिनोद समेता । सुतनु रहे लगि रहै निकेता ॥
श्री सिय वर इच्छा अनुकूल । वर्त्तमान मानै भूलै सब शूल ॥
रंचक उर उद्वेग न धारो । निशिदिन सियवर नाम उचारो ॥

इष्ट प्रपन्न कह्यो समुझाई। आरत सहित सरस सुखदाई॥

आचार्य-अभिमान

सुंदर सहज सनेह मय, आचारज अभिमान।
पंचम परम उपाय यह, अब बरनत सुखखान॥

श्रीसतगुरु पद आस दृढ़, सेवन श्री गुरुदेव।
आन बासना निदरि सब, पाय जथारथ भेव॥

श्री गुरु पदुम प्रकास प्रद, परम पराग अदाग।
धारैं भाल रसाल निज, काल कराल बिराग॥

श्री गुरु-सम्बधीन सन, साजै सहज सनेह।
श्री गुरुबर बानी गुनै, उर अन्तर सम गेह॥

सहज सार सुख प्रद सर्बोपर, । श्रीसतगुरु पद भजन मोद घर॥
याते सुलभ उपाय अनूपा। श्री गुरु पद सेवन सुखरूपा॥
ज्ञान योग अरु भक्ति प्रपत्ती। करनमांझ समरथ नहिं नीती॥
सो सब आस भरोस बिसारी। श्रीगुरुरज आश्रित दृढ़धारी॥
तन मन धन सर्बस गुरु दीजै। दीन भावना मनन करीजै॥
परम कृपाल कृपा बल पाई। सियवरसुखद सनेहसोहाई॥
छूटै आकस्मात उपाधी। त्रिबिधिताप दुखदायक व्याधी॥
श्री सतगुरु आधीन रहावै। तिनकी कृपा परमपद पावै॥
अति दयाल अपने अनुमानी। हरै अविद्याजनित गलानी॥
राखैं परम मोद युत जाही। विषय बयारि न परसैं वाही॥
निज वैभव ते ताहि उधारैं। तासु भजन निर्बेद न धारैं॥
सियवल्लभ सन्मुख सुख सुन्दर। सौंपैं ताहि उदार धुरन्धर॥
नित्य स्वरूप अनूप मधि, पहुँचावैं अनयास।

साधन श्रमबिनु परम गुरु, सुखदायक रसरास ॥
श्री आचारज कंज पद, सेवत परम प्रमोद ।
बाढ़त हृदय रसेश सुख, परिकर नित्य बिनोद ॥

पांच उपाय अपाय पर, पावनेश पद अर्थ ।
युगल अनन्य शरन रच्यौ, सुनत गुनत भव ब्यर्थ ॥
पांचहु मांहि परत्वपर, श्री गुरु सेवन कीन ।
युगल अनन्य शरन सुभग, अमल आभरन पीन ॥

फल–विवेचन

फल पंचक वंचक-बिषय, समन आन करु मित्र ।
सावधान ह्वै पांचवो, धारन करौ पबित्र ॥

है पर्य्यापन भेद, पुरुषारथ फल एकही ।
बिन जाने हिय खेद, पावहि बिगत बिबेकही ॥
अर्थ[१] धर्म[२] अरु काम[३], मोक्ष[४] महा मुदप्रद सुभग ।
पुरुषारथ अभिराम, चार बिदित दायक उमंग ॥

पंचम सियबर मिलन सोहायो । सर्बोपरि पुरुषारथ गायो ॥
अब सुनि चारिहु रूप सोहावन । सर्बोपरि पावन गुन गावन ॥
निकर जीव रक्षन व्रत धारी । तनमनबचसब बिधि उपकारी ॥
हिंसा त्रिबिधि बिशेष बिहाय । दयारूप अनुपम छबि छाय ॥
बेद बिधान प्रमान निरंतर । निज कपोल कल्पित तजि अंतर ॥
दया सकल धर्मन में रानी । याको धरि हरिमिलहि सुज्ञानी ॥
चारि चरन निज धर्म बिचारो॥ सत्य[१]शौच[२]तप[३]दया[४]सम्हारो ॥
दया समेत सबै सुखदायक । तेहिबिन अफल न नेकु सहायक ॥

धर्म

सर्बोपरि शुचि धर्म बतायो। सद्ग्रंथन को सार सोहायो ।।
धर्म वर्म जेहि तन निज धारयो। सो काहू बिधि कतहुँ न हारयो ।।
धर्मसेतु रक्षक रघुनायक। संतत धर्मी सुजन सहायक ।।
सहज अकाम होय धरु धर्महि। पाइये परम धाम तजि भर्महि ।।
काम सहित जो धर्म कमावै। सो पुनि-पुनि भव तरु फल पावै ।।
ताते निर्मल मन करि भाई। धर्माचरन सजो सुखदाई ।।

अर्थ

अर्थ अनर्थ समर्थ स्वरूपहि। करो बिचार समेत निरूपहि ।।
बरणाश्रम अनुकूल विशेषी। करै बीज अर्पन गत द्वेषी ।।
धर्म सहित धन प्रथम बटोरै। पुनि रक्षन करि बहु बिधि जोरै ।।
जननी जनक अतिथि सुर सेवा। करै अधिक वित युत गुरु देवा ।।
सियबर रसिकन माँझ लगावै। विषय भोग बासना भगावै ।।
जो सकाम अंतर जन होवै। स्वर्ग जाय बहु बिधि सुख जोवै ।।
सहित अकाम धाम प्रभु पावै। अमित पुरान प्रमान सुगावै ।।
अर्थ अनर्थ हेत श्रुति गाई। सहित बिचार प्रशंस बनाई ।।
बिगत विवेक धर्म फल फीको। रहित अनर्थ अर्थ अति नीको ।।
जो सकाम वित खरचत प्रानी। सो बहु बिधि पावत दुख खानीं ।।

काम

तीजो काम कलंक निहारो। बामा बिषय बीच अवधारो ।।
अथवा ऋद्धि-सिद्धि बहुँ भाँती। काम रूप बरनहि बुध कांती ।।
वामा सहित जो कांम बखान्यो। ताते भाँति द्वैत पुनि मान्यो ।।
शुद्धा-शुद्ध बिचारहु प्यारो। बेद-बिधान प्रथम अविकारो ।।

दूजो निज मन मलिन प्रसंगा । जाके किये सुगति रस भंगा ॥
निज तिय धर्मशास्त्र सम राखै । तो वह गृही स्वर्ग फल चाखै ॥
अधम कुमारगगामी पाजी । पर वामा गनिका लखि राजी ॥
ते शठ निरयनिकेत निवासी । परै ग्रीव तिन के यम फाँसी ॥
ताते सावधान नित रहिये । श्रुति सत पंथ चलत गति लहिये ॥

संत निरादर नित करै, समुझ तुच्छता फीक ।
धर्म अर्थ अरु काम पुनि, बरनि सुनायो नीक ॥
अन्य बरन को अति सुखद, दुखद मोक्ष चित चाह ।
युगल अनन्य शरन सकल, अंत देहि दुख दाह ॥
याते तीनो प्रथम तजि चाहिये मोक्ष विशेख ।
युगल अनन्य शरन अगम, मरम पाँचवो लेख ॥

मोक्ष

अब बरनो अपवर्ग को, रूप सर्ग कृत हानि ।
करत भरत आनंद उर, अति अद्भुत सुखखानि ॥

जरामरन शंका उर लाई । तेहि नाशन हित यतन जगाई ॥
साधन सत्र सम्पन्न सोहाये । बिश्व बासना गंध नसाये ॥
अहनिशि बेद भाल अवलोके । सम दमादिकन करत बिशोके ॥
पांचो विषय बिकार बिसारै । अहं ममादि कुमति तम टारै ॥
अमल चित ह्वै पद निर्बाना । पावहि अनायास गतमाना ॥
प्रकृतिपार निजरूप समावै । परस्वरूप सुखस्वाद न पावै ॥
बंधन तजि भरि अगुन अतीहा । पै प्रीतम रस रहित अलीहा ॥
परमभिष्ट रस मान न कबहूँ । भये शून्य सम सुख नहि तबहूँ ॥
सरस संत भाविक नहि चाहै । रोग सोग सम ताहि सराहै ॥
जहं सिय बर छबिनाम न होवै । तहँ न रमहिजनरसिकबिगोवै ॥

पुरुषार्थ

पंचम पुरुषारथ सुखसारा । सुनिये जहँ सनेह संचारा ॥
बपु प्रारब्ध प्रलय करि नीके । समुझिसुकृत अघदोउअतिफीके ॥
षटबिकार युत तीनो तापा । त्याग दुखद संकल्प अलापा ॥
सियबर रूप अनूप सोहावन । तज्यो ज्ञान बिपरीत अपावन ॥
संसृति हेतु रूप दुखदाई । निज स्वरूप बिस्मरन बिहाई ॥
स्वर्ग मोक्ष अभिलाष बिसारी । केवल ललन मिलन पन धारी ॥
बपु चौबीसतत्त्व कृत त्यागी । समुझि हेयतर प्रभु अनुरागी ॥
श्रीसियराम मिलन अभिलाषे । मायिकगुन गति श्रमबिननाषे ॥
प्रान सुषमना द्वार निकारी । भाल भेदि गये धाम खरारी ॥
केवल सूक्षम तन से गमनो । बिधिवैभवदिशि ते अतिबिमनो ॥
अर्चिरादि पथ होय प्रबीना । रबि मंडल छेद्यो अति झीना ॥
प्रकृति आबरन उतरि बहोरी । बिरजा सरित लख्योरंगबोरी ॥
तेहि सरि मज्जनकरिबड़भागी । लिंगदेह सबबिधितेहित्यागी ॥
कारनतन बासना बिनासी । शुद्धभयो बहुबिधि सुखरासी ॥
बिरजा पार भयो अनयासा । निजसंकल्प सहितगत आसा ॥
अमल अमानव करपरपरस्यो । महाप्रेम सागर सुखसरस्यो ॥
त्रिगुन रहितबपुबिरजबिलासी । दिव्य भव्य आनंद निवासी ॥
सदा प्रकास रूपसुचि सुन्दर । जेहिलखिलज्जित अमित पुरंदर ॥
सियबर रूप प्रकास सोहावन । भाजन भयो छयो छबिछावन ॥
निरबधि तेजतरुन बल पाई । हिय उत्साह अपार बढ़ाई ॥
चल्यो अमानव दर्शित मारग । तिनबर बिपिनलख्योगुनपारग ॥
सुभग सरोबर तहाँ निहारी । रम्य दीप्त बर नाम बिहारी ॥
तेहि सरमज्जन करियुतप्रीती । सोम श्रवन बटतट अबिगीती ॥
निरखत नैन महामुद मात्यो । रास रहस सुखमा छबिरात्यो ॥
तेहि तर दिव्यमहामनि मंडित । बेदी बिशद बिभास अखंडित ॥

तहाँ पांच शत अपसरा राजैं । भूषन बसन दिव्य तर ताजैं ॥
नख शिखसाज सजें द्युतिदेती । बरबस चित्त चोराय सबलेती ॥
तिनकर कंज मंजु से सोहन । अमल आभरन लहि मुद दोहन ॥

सियवर प्रेषित पारषद, संग रंग सरसाय ।
अमित कुतूहल पंथमधि, निरखत हरष निकाय ॥
चल्यो चाव चित चौगुनो, निज मुद-मंगल धाम ।
श्रीसतगुरु गुनगन सुमिरि, पुलकित बपुष निकाम ॥
श्रीपुरवासी दरस प्रिय, परस परेश समान ।
करत भरत उर हरष अति, रहित खेद भवभान ॥
राजपंथ ह्वै पुनि चल्यो, गोपुर लख्यो सुजान ।
महा मनिन मय अमित विधि, रचना अकथ अमान ॥
द्वारपाल पद प्रनतिकरि, तेहि दर्शित पथ पाय ।
भीतर गयो बिशोक उर, रचना लखि सचुपाय ॥

सहस थंभ संयुत सुखधामा । मंडप महाप्रकास ललामा ॥
असित प्रभाकर किरिनि विनिंदिक । भाविक भाव चाव भरिविंदक ॥
मनि सोपान द्वार ह्वै नेही । चढ्यो बढ्यो हिय हर्ष अदेही ।
निरख्यो नैन मनोहर जोरी । गौर श्याम अद्भुत रंग बोरी ॥
धनुष बाण कर कंज विराजै । नख शिख नवल विभूषन साजै ।
कुंडल क्रीट चन्द्रिका सोही । जेहि छवि छटा निरखिमतिमोही ॥
अङ्ग अङ्ग सौंदर्य्य सोहावन । उपमा निखिल रहित मनभावन ।
असितपीतवरवसनसोहायो । सुखमा अमल अधिक दरसायो ॥
शोभाअवधिअवधपुरनायक । परिकर निकर समेत अमायक ।
सखी सहचरी अमित सुदासी । चहुँदिशि चमक रहीं चपलासी ॥
नाना सौंज लिये कर माहीं । निरखि रही प्रीतम गल-बाहीं ॥

यहिविधिसियवल्लभछविदेखी। यकटक रह्यो नैन अनमेखी ॥
सियवर अति सनेह युत ताही। सकल भाँति अति प्रीतिसराही ॥
मम चित चाह रही अतिभारी। कब लखिहौं परिकर प्रियकारी ॥
तब आवन इत अद्भुत भयो। मोद प्रमोद मोहि अति नयो ॥
बड़भागी सोई अनुरागी। जो ममनिकट आय छविपागी ॥
याविधियुगलकिशोरसुधानिधि। वानीविमलकहीसबविधिसिधि
सदा मोद मंदिर रस लहिये। परिचर्य्या निजरुचि वस कहिये ॥
अमित रूपधरि सेवा कीजै। यथायोग्य अभिनव सुखपीजै।
या प्रकार श्रीवदन सुवानी। सुनि सुनिपरम प्रमोद वितानी ॥
अहोभाग्य निजमानि विशेषी। श्री सेवा सुख लह्यो अशेषी।

एक प्रकार मिलन रहस, गाई गुन अधिकार।
दूजी सरस सनेह मय, रसिकन मिलन सुसार ॥

विमलभाव मधि लीन मन, भली प्रकार सुधार।
तन तजि खटका लीन ह्वै, लहै अवध अविकार ॥

ऊरध लोक गमन कठिन, कष्ट विहाय विशेष।
छित मधि अनुपम अवधपुर, पावैं सहितावेश ॥

मधुर मनोहर चरित वर, दंपति केलि कलान।
निरखै हरखै एकरस, परिहरि अमित विधान ॥

प्रथम मुक्ति क्रम ते कही, दूजी सरस स्वतंत्र।
अवध विदित वर वास सजि, विलसे रहस सुमंत्र ॥

श्री सत्या शोभास्पद, युगल रूप रमनीय।
प्रगट कृपामय गोप पुनि, चिदानन्द कमनीय ॥

जो चाहै पररूप श्री, अवध अखंड विहार।
तो सब आस नसाय के, सेवै अवध बहार ॥

प्रगट अवध सेवन सजे, गोप होत तेहि लाह।
युगल अनन्य शरन सुधा, सागर मत अवगाह ॥

परम कृपा सौलभ्य गुन, सिंधु अवध हितकारि।
सेइय मन क्रम बचन करि, त्रिविधि वासना बारि ॥

गुप्त प्रगट अंतर लखब, उभय एकता रूप।
युगल अनन्य अजान मन, पचत परत तम कूप ॥

विरजा पार अवध अमल, केवल वैभव वान।
भारत वर्ष अवध उभय, रहस सहित रसखान ॥

मरमी जन जानहि अवध, अमल प्रभाव अनूप।
वृथा विगोवत वैश वद, वादि परे तम कूप ॥

रुचजननको अभित अति, अवध स्वरूप विचित्र।
युगल अनन्य शरन लखे, सब बिधि प्रेम पवित्र ॥

युगल अवध रसएक नित, जहँ रुचि तहाँ प्रवेश।
युगल अनन्य शरन चहत, प्रगट अवध आवेश ॥

श्रीवशिष्ठ मुनि संहिता, मांझ उभय निरधार।
पै विशेष यहि अवध को, कीन्हो भली प्रकार ॥

ताते रसिक अनन्य जन, ऊरध गमन विसारि।
छिति मंडल साकेत पुर, वास सजै पन धारि ॥

प्रकृति पार श्रीअवधपुर, ऊरध अरध अधार।
कथन मात्र राजहि रसा, समुझहि सुबुध विचार ॥

फलस्वरूप वरन्यो बिमल, अर्थ तुरीय अनूप।
पंचम अर्थ सुचित्त दै, सुनिये सुजन स्वरूप ॥

विरोधी विवेचन

वरनौं मतिगति सदृश अब, त्रिफल विरोधी रूप।
इनहीं के बस परत है, नागहलजु तम कूप॥
येन-केन विधि यतन युत, जहो लहो मकरंद।
श्रीसीता बर पद पदुम, हरन अशेष ‿फंद॥

उपादेय वरबस्तु विरोधै। नित्य निरोध कर सुख खोवै॥
ताको संत विरोधी भाखे। जानि बूझि त्यागे रसचाखे॥
पांच प्रकार भेद पुनि जामे। महा प्रबल दुर्मति अति तामे॥
निजस्वरुप पररूप विरोधी। तीजो अमल उपाय निरोधी॥
पुरुषारथ विरोध जिय जानों। पंचम प्राप्ति विरोधी मानो॥

स्व-स्वरूप विरोधी (वृत्ति)

देहादिक अनात्मा माहीं। अमल आतमा मति दरसाहीं॥
पुनि स्वंतत्रता हृदय विचारैं। सिय बर शेष भावनहिं धारै॥
ब्रह्मज्ञान मति दृढ़ करि राखै। आपहि को परमेश्वर भाखै॥
तत्सम्बन्ध भावना त्यागे। नूतन मतन माँझ अनुरागे॥
देही देह अर्थ श्रुति वरने। ताको सुमन करत नहि निरने॥
इत्यादिक मिथ्या अध्यास। जानु विरोधी निज दुःखरास॥

पर-स्वरूप-विरोधी

परम विरोधी यह दुख कारन। सियवर रूप विस्मरन वारन॥
इष्ट स्वरूप वियोग करावै। आतमही पर रूप बतावै॥
सुनिये श्रबन न तिनकी बातैं। जानो सबप्रकार निजघातैं॥
ताते तिनको संग न कीजै। सरस सजाती साथ सजीजै॥

श्री गुरुबचन बिबेक बिचारी । तजो बिरोधी निज दुखकारी ॥
पर स्वरूप को प्रवलबिरोधी । अपर सुतनमधिप्रीतिबिरोधी ॥
ईश समान आनसुरजाने । पूजि रेचिचित लाय प्रमाने ॥
सियबर बिनु रक्षक बिधि जाने । औरहु देब उपासन ठाने ॥
समता अपरदेब समलावे । मानव मति सद्इष्ट बसावै ॥
उपादान मेधा मधि मूरति । तथा अनीश भावना पूरति ॥
निज कपोल कल्पित बहु माने । बेद पुरान प्रमान न जाने ॥
श्री अर्चा पररूप समाना । नहि जानै मतिमंद अजाना ॥
इत्यादिक पररूप बिरोधी । श्री सतगुरु सबभाँति प्रबोधी ॥

उपाय बिरोधी

यतन रचाय त्यागिये येहा । जो चाहिये पर मधि दृढ़नेहा ॥
साधन अपर हृदय रुचिलावे । तामें पुनि परत्व प्रगटावे ॥
गौरब परत्व उपेय निरूपन । लघुताई उपाय अनुरूपन ॥
निज उपाधि बहु देख सँवारन । यतन बिरोधी अतिदुखकारन ॥
भक्ति प्रपत्तिबिहीन उपाया । जानै बहु अभिमान समाया ॥
ईश प्रेम सम्बन्ध न जामें । सोबिरोध संशय नहिं यामें ॥

पुरुषार्थ-बिरोधी

सिय रघुबीर रूपतजि दूजो । पुरुषारथ उर गुनै अपूजो ॥
निज इच्छा अनुसार स्वतंत्रहि । स्वारथसहित भजन अभिमंत्रहि ॥
पुरुषारथ बिरोधि लखि येही । तजे भजे सियराम सनेही ॥
सियवल्लभ बिनु फल भल जानो । अफल समानसुदृढ़ जियजानो ॥

प्राप्ति बिरोधी

प्राप्ति बिरोधी दुखद अति, जानु सुगुरुमुख मीत ।

छोडि भजो श्री जानकी, जीवन सहित प्रतीत ॥

बपु प्रारब्ध बिबश नहिं जाने । पुनि ताको अनुताप न माने ॥
बपु संबधिन सन अति नेहा । करै न खेद धरै लखि खेहा ॥
श्री सियबर अपराध सजावे । तिमि शुचिसंत अनादरभावै ॥
रसिकन को अपराध अगाधा । यह सबबिधिप्रपत्तिमधिबाधा ॥
प्रभु नहिं सहत संत अपराधे । चाहै कोटिन साधन साधे ॥
ताते सावधान ह्वै प्यारे । येन-केन बिधि ताहि बिसारे ॥
राजधान्य तिमि अनहित भोजन । श्रद्धा रहित भाव बर खोजन ॥
ऐसो असन ज्ञान तप नासे । महा घोर तम हृदय निवासे ॥
ताते रसना विजय करीजै । षटरसस्वाद त्यागि अति दीजै ॥
जीह जीति निज सुख रसपावैं । भीख असन करि भजन बढ़ावै ॥
श्वान कुरंग भूप गति त्यागे । षटपद रहस गहै अनुरागे ॥
बहुरि अयांची बृति सुधारे । कुपथ प्रतिग्रह से कर टारे ॥
जीह बिजय बिनु स्वाद न पावै । इष्ट मिष्ट गुन हृदय न छावै॥
जौं लौं जगत सवाद सनेही । तौं लौं बह रस दुर्लभ तेही ॥
काहू से सहबास न कीजै । सरस सजाती संग रहीजैं ॥
विमल बोधनिज हृदि विशेषी । असतसंग सुनि निजदृग देखी ॥
संतत सानुकूल गति धारन । कीजै तजि प्रपंच गुन कारन ॥
प्राप्ती रूप बिरोधि बखानी । समुझि सतत तजिये गुरुज्ञानी ।

कालक्षेप—व्यवस्था

पांचौ अर्थ अनर्थ निवारक । भवजब अति अपार निधितारक ॥

याही विधि आनंदनिधि, अर्थ सुपंचक ज्ञान ॥
मन को करि दृढ़मति सहित, रहित मोह अभिमान ॥ १ ॥

श्रीसतगुरु वर वदन से, प्रथम श्रवनहु होय।
बहुरि हृदय आवेश तेहि, विविध बासना धोय ॥ २ ॥
कालछेप प्रभु भजन करि, शुचि करतव्य बिशेष।
सद ग्रंथन को भाववर, त्यागिये मन कृत दोष ॥ ३ ॥
निंदा अस्तुति समगुनै, भुनै बासना बीज।
युगल अनन्य प्रपन्न गति, बूझिये बिमल तमीज ॥ ४ ॥
निज आश्रम कुल उचित तर, धर्म करैं हरषाय।
तजै मोह आलस असत, विषय बिलास विहाय ॥ ५ ॥
सामग्री सब सौंप तहँ, जहँ कुछ निज अभिमान।
सब सन मन मति उलटि निज, भजिये श्रीसुख खान ॥ ६ ॥
प्रीतम हित धन धाम सब, दीजे सतत लगाय।
उत्सब करि बहु भाँति से, प्रेम सहित हुलसाय ॥ ७ ॥
तन मन धन से संतगुरु, पूजिये सहित सनेह।
दोष दृष्टि अति दूर धरि, जानिये गुन गन गेह ॥ ८ ॥
असत संग दुखप्रद समुझि, कीजिये संतत त्याग।
संत संग से सुरुचि सजि, उपजाइय अनुराग ॥ ९ ॥
पंच काल तत्पर रहै, यहि प्रकार गुन रीति।
क्रम कैसेहु त्यागे नहीं, करि के प्रीति प्रतीति ॥ १० ॥
प्रथमहि अमल अनूप अति, जानु अभिगमन सार।
तन मनादि मज्जन सुजन, संप्रदाय अनुसार ॥ ११ ॥
उपादान भिक्षा करन, पूजन श्रुति अभ्यास।
पंचम योग ससाधि चित, ध्यान ध्येय अध्यास ॥ १२ ॥
समय समय कीजै सकल, निज स्वरूप अनुकूल।
युगल अनन्य शरन अवशि, मिटे मनों भवशूल ॥ १३ ॥
सावधान सतत रहै, सहै द्वंदभव सोग।
युगल अनन्य शरन लहै, अवशि प्राणपति योग ॥ १४ ॥

श्रीगुरुनिकटअजान सम, प्रभु समीप परतंत्र।
संतन ढिग निज दोष को, सुमिरन रहित स्वतंत्र ॥१५॥
श्रीआचारज मध्य शुचि, सर्वज्ञता बिचारि।
नम्र होइ सेइय सदा, अहं भावना टारि ॥ १६॥

संतन मिलि परत्व वहुभाखै। रसिकन को सर्वोपरि राखै॥
सियवर गुन बन दिव्य मनोहर। निकट रहै ध्यावै शुचि सोहर॥
संग बिजाती हरि अहि मानै। हालाहल तिमि शस्त्र पछानै॥
कोटिन कष्ट सहै वरु प्राना। प कुसंग जनि सजो सुजाना॥
सब में इष्टभाव पटु धारी। त्रिबिधि विरोध विकार बिसारी॥
मान मोह मद असद निवारै। निशि दिन रामनाम उच्चारै॥
मिलन हेत तलफै पिय प्यारी। विश्व विकल्प अनल्य विसारी॥
निर्भर रहै सतत तजि आसा। प्रीतम मिलन हेतु अभिलासा॥
चिंता लीन चित्त नित राखै। प्रभु दर्शन अभिमत रस चाखै॥
तन सनेह सब बिधिकरि नीरस। तजै असार सार गहिपीरस॥
देह अन्त परयंत सदाई। सुमिरत सजो प्रमाद बिहाई॥

निर्विकार मानस करै, तजि आलस बिष वाद।
युगल अनन्य शरन लहै, प्रीतम परम प्रसाद ॥ ॥
जोयहि विधि नितमनन सुख, करै उपाधि विसार।
युगल अनन्य शरन सजै, सरस सनेह सुधारि ॥ ॥
पांचौ अर्थ समर्थ तर, सतत विचारत मित्र।
मिटै मोहमय मानसन, होत प्रवोध विचित्र ॥ ॥
श्रीकामद गिरिवर निकट, स्वामिनि[1] कुँड समीप।
श्री प्रमोदवन ढिग ललित, रच्यो अर्थ शर[2] दीप ॥ ॥

१—स्वामिनि कुंड=श्री जानकी कुंड।
२—अर्थशर=अर्थ पंचक।

श्रीगुरुपदरज विसद निज, भाल धारि युत प्रेम ।
अर्थ सुपंचक ग्रंथ वर, रच्यो विधायक छेम ॥ ॥
अधिकारी वर वस्तु जे, तिनको यह सम प्रान ।
है है सबही विधि सुखद, समुझि रहस्य विधान ॥
सब संतन से प्रनय युत, मेरी नति सब भाँति ।
पहुँचे बारंबार नित, दीजे प्रिय नव कान्ति ॥
युगल अनन्य शरण सहज, स्वभाविक सुख संग ।
धाम वास चाहत अचल, त्यागि कुदेश कुरंग ॥
चित्रकूट चित में बसत, श्री कोशलपुर संग ।
अपर लोक सम शोक सब, ताते तज्यो प्रसंग ॥

जय जय श्रीसियराम, श्री सतगुरु आनंदघन ।
दायक अति आराम, अति अद्भुत आंनद वन ॥
श्रीसरयू तर तीर, शुचि निवास संतत सुखद ।
सुमिरत सिय रघुबीर, जानि जगतमुद सब दुखद ॥
श्री श्रीधाम बिहाय, हाय हमेसे हीय धरु ।
तेहि हित बास सोहाय, वपुष रहे लगि अचल करु ॥

श्री श्री जीवाराम सुख, धाम सुगुरु पद कंज ।
ध्याय गाय सियराम गुन, अति अनुपम मृदु मंज ॥
युगल अनन्य शरण धरयो, श्रीकरुनानिधि नाम ।
श्री प्रमोदबन बास वर, दियो हियो आराम ॥

इतिश्री अनंतश्रीस्वामी जीवाराम सुखधामानुगामी
श्री श्री १००८ श्रीस्वामीयुगलानन्यशरण
विरचित अर्थ पंचक सम्पूर्णम